

हाशिये का सशक्तीकरण

दलित स्त्रियाँ : हसरतें और अनुभव

तरुशिखा सर्वेश

सार्वभौम कसौटी पर आधारित स्त्री-एजेंसी के विकास के लिए 'स्त्री-सशक्तीकरण' एक समरूप पदबंध की तरह समझा जाता रहा है। सशक्तीकरण का यह सार्वभौम एजेण्डा स्त्रियों को एकाश्मिक श्रेणी की तरह ग्रहण करता है। दिक़्क़त यह है कि एक व्यापक श्रेणी के भीतर विभिन्नताओं पर विचार न करने के कारण यह रवैया हमें स्त्री-अनुभव के बारे में विपरीत समाधानों और दृष्टिकोणों की तरफ़ ले जाता है। इस तरह का सशक्तीकरण संबंधी विचार समाज के अब तक उपेक्षित वर्गों की स्त्रियों की हसरतों पर ध्यान दे पाने में नाकाम है। यही है वह कारण जिसके तहत मुझे समाज की विभिन्न उपश्रेणियों के बीच सशक्तीकरण की व्यक्तिपरक भावनाओं की समावेशी समझ पर चर्चा करने की प्रेरणा मिली है। मेरे इस अनुसंधान का मक़सद पश्चिमी उत्तर प्रदेश स्थित अलीगढ़ ज़िले के शहरी और मुज़फ़्फ़रनगर ज़िले के ग्रामीण इलाक़े की दलित स्त्रियों के अनुभवों, आकांक्षाओं और कार्यों के आईने में सशक्तीकरण संबंधी उनकी व्यक्तिपरक भावना को उजागर करना है।

उद्देश्य, कार्यक्षेत्र और प्रविधि

इस अध्ययन का उद्देश्य दलित स्त्रियों के सशक्तीकरण के बोध की पड़ताल करना है। दरअसल, शहरी क्षेत्रों के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में इस मुद्दे पर पूरी जाँच और चर्चा अभी तक नहीं की गयी है। दलित स्त्रियों के सामाजिक संदर्भ अक्सर जाति-वर्ग-जेण्डर के तनाव से भरे होते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए उनके लिए एक अलग पद्धति तैयार करने की ज़रूरत है ताकि उसके ज़रिये दलित स्त्रियों के सशक्तीकरण की भावना के इस निजी पहलू पर संवेदनशीलता से सोचा-समझा जा सके। मैंने अलीगढ़ के शहरी और मुज़फ़्फ़रनगर की ग्रामीण दलित स्त्रियों के जीवन-अनुभवों को दर्ज करने के लिए घटनाक्रियाशास्त्र (फ़ेनोमेनोलॅजी)[1] के गुणात्मक नज़रिये को अपनाया है। इस अध्ययन में फ़ील्ड नोट्स, सघन संवाद, फ़ील्ड से लिए गये नोटों का अध्ययन एवं खुली और बंद प्रश्नावलियों के साथ स्त्रियों के वृत्तांतों को शोध के औज़ार के रूप में प्रयुक्त किया गया है। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य दलित स्त्रियों के सशक्तीकरण की व्यक्तिपरक समझ को बाहर लाने की कोशिश है। साथ ही यह उनके अनुभवों, उम्मीदों और अपने वातावरण से उनके सामंजस्य बिठाने के प्रयासों पर भी निगाह डालता है। मुझे उम्मीद है कि मेरे इस प्रयास से ख़ास तौर पर अनुसूचित जाति की स्त्रियों के साथ-साथ इस श्रेणी से बाहर की स्त्रियों पर अकादमिक एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं के अनुसंधान में और प्रगति होगी। यह अध्ययन इस प्रकार से डिज़ाइन किया गया है जिससे दलित स्त्रियों के उत्तरों से ही उनकी बेहतरी के उपाय खोजे जा सकें।

अध्ययन और प्रतिचयन के लिए भौगोलिक क्षेत्र

मेरे शोध का एक बड़ा हिस्सा राज्य, संस्कृति और स्त्रियों के आपसी संबंधों की व्यापक पड़ताल करता है। इस अध्ययन में मैंने राज्य और संस्कृति की शक्ति-संरचनाओं के भीतर स्त्रियों की फितनागरी या सबवर्जन को दर्ज करने का प्रयास किया है। वे राज्य की संस्था से विभिन्न प्रकार के मोलभाव के ज़रिये अपने लिए एक गुंज़ाइश की रचना करती हैं। यह गुंज़ाइश उन्हें आज़ादी का अहसास दिलाती है। इन अहसासों को समकालीन जनतांत्रिक विमर्शों के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है कि किस प्रकार विभिन्न तबक़ों की स्त्रियाँ अपनी बात कह देने की जुगत निकाल ही लेती हैं।

मुज़फ़्फ़रनगर में मैंने खाप पंचायतों वाले इलाक़ों की एथ्नॉग्राफ़ी की है और अलीगढ़ ज़िले में शहरी ग़रीब स्त्रियों के जीवन को आर्थिक संकेतकों के बाहर उनके रोज़मर्रापन में देखने का प्रयास किया है जहाँ वे निर्भरतापरक और शोषणमूलक व्यवस्था में अपनी बेहतरी के उपायों के लिए संघर्ष कर रही हैं। जब मैं अलीगढ़ और मुज़फ़्फ़रनगर की फ़ील्ड डायरी देख रही थी तो उनके पृष्ठों में दलित स्त्रियों के जीवन के बारे में एक साझा पैटर्न उभरता हुआ दिख रहा था। उनकी हसरतों, अनुभवों, प्रभुत्वशाली वर्गों एवं राज्य से मोलभाव की प्रक्रिया में मुख्यधारा से एक दुराव प्रगट हो रहा था। अलीगढ़ शहर में निर्भर और शोषणपरक आर्थिक संबंधों में दृश्यमानता ने केवल अपेक्षाकृत कम थी बल्कि वह नामहीन भी थी, जबकि मुज़फ़्फ़रनगर के गाँवों में स्त्रियों पर ऊँची जाति और सांस्कृतिक प्रभुत्व के असर के साथ-साथ अपनी ही जाति के पुरुषों का बहुस्तरीय और बहुपरतीय शोषण क़ब्ज़ा जमाता हुआ दिख रहा था। इन्हीं कारणों से इन दो जगहों की दलित स्त्रियों के लिए ख़ुद अपनी मर्ज़ी से अपने बारे में बात करना बहुत मुश्किल है। इसलिए उनकी दुनिया में दाख़िल होने के लिए मैंने दो प्रकार की सैम्पलिंग या प्रतिचयन की प्रक्रिया को

---

[1] फेनोमेनोलॅजी या घटनाक्रियाशास्त्र की अवधारणा को हुस्सर्ल ने प्रस्तुत किया जिसे हाइडेगर ने आगे बढ़ाया. फेनोमेनोलॅजी बताती है कि दुनिया में चीज़ें किस प्रकार हमारे समक्ष आती हैं और वे अपने आपको कैसे प्रस्तुत करती हैं. यह हमारे जीवन में चीज़ों के मायने को भी बताती है. इसी क्रम में लोगों का एक 'इंटेंशन' होता है. उनकी 'इंटेंशनैलिटी' को इस आधार पर व्याख्यायित किया जाता है कि वे इस दुनिया के रोज़मर्रापन में कैसे रहते हैं. यह उनके साथ दुनिया के संबंधों की व्याख्या भी करती है. मास्क्स डी वागले (2010).

आधार बनाया। पहले तो स्नोबाल सैम्पलिंग/प्रतिचयन और उसके बाद फ़िक्स्ड सैम्पलिंग/प्रतिचयन के सहारे शोध को आगे बढ़ाया गया है।[2]

इस शोध के लिए मई, 2015 से मई, 2016 के बीच अलीगढ़ ज़िले में क्षेत्र–कार्य किया गया। अध्ययन के लिए अलीगढ़ शहर में चार क्षेत्रों को दलित आबादी के आधार पर और साथ ही शहर के भीतर उनकी स्थिति के आधार पर चयनित किया गया। अलीगढ़ शहर में इन चार क्षेत्रों को चुना गया— चुहरपुर, क्वारसी (मुख्य), होली चौक (बाईपास रोड, क्वारसी) और दोधपुर। क्वारसी (मुख्य) और होली चौक कोइल तहसील में और चुहरपुर चण्डौस तहसील, (डाकख़ाना गभाना) में आता है। दलित समुदाय की उपश्रेणियों जाटव और वाल्मीकि की बसावट वाला चुहरपुर अलीगढ़ के ताला कारख़ाना क्षेत्र के क़रीब है। क्वारसी और होली चौक इलाक़ों में मुख्य रूप से वाल्मीकि समुदाय के लोग रहते हैं। दोधपुर क्षेत्र अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के नज़दीक सिविल लाइंस के मुख्य इलाक़े में है।

मुज़फ़्फ़रनगर ज़िले में किये गये क्षेत्र–कार्य को मैंने 2012 से 2015 के बीच अपनी पीएचडी थीसिस के कार्य–क्षेत्र के रूप में किया था। अध्ययन की प्रकृति के हिसाब से बालियान खाप के अंतर्गत मुज़फ़्फ़रनगर ज़िले के पूरे इलाक़े को लिया गया है। 84 गाँवों के साथ बालियान खाप सबसे बड़ी खाप है जिसमें से 72 गाँव उत्तर प्रदेश की सीमा में और बाक़ी 12 हरियाणा और राजस्थान की सीमा में हैं। बेहतर समझ के लिए, जो गाँव जो इस क्षेत्र का सबसे अधिक प्रतिनिधित्व करते हैं, उन पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इस प्रक्रिया में मैं चौदह गाँवों में गयी जो इस काम में मेरी मदद कर सके। ये गाँव थे— शोरों, सिसौली, बुढ़ाना, भोंरा कलाँ, पुरबालियान, भनेरा, ताउली, नरोत्तमपुर मज़रा, जागाहेड़ी, पिन्ना, बघड़ा, हैदर नगर, चरथावल और फुगाना।

उपर्युक्त सभी गाँवों में आठ गाँव बालियान खाप और बाक़ी के गाँव अन्य खापों में हैं। उन गाँवों से बालियान खाप के चार गाँवों का मैंने अध्ययन किया है। मुज़फ़्फ़रनगर के चार गाँवों में शोरों, सिसौली, नरोत्तमपुर मज़रा और ताउली को चुना गया है। शोरों और सिसौली जाट बहुल गाँव हैं, नरोत्तमपुर मज़रा में मुख्यत: दलित आबादी है और ताउली एक मुस्लिम जाट (मूले जाट) बहुल गाँव है। सिसौली गाँव अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ बालियान खाप के चौधरी की गद्दी है। सिसौली में 38 फ़ीसदी जाट, 30 फ़ीसदी मुसलमान, 15 फ़ीसदी अनुसूचित जाति, 15 फ़ीसदी वैश्य और 2 फ़ीसदी अन्य समुदायों की आबादी है। नरोत्तमपुर मज़रा की आबादी में 30 फ़ीसदी जाट, 24 फ़ीसदी चमार, 18 फ़ीसदी मुस्लिम, 21 फ़ीसदी झींवर, 6 फ़ीसदी गोस्वामी और वाल्मीकि, 1 फ़ीसदी नाई और बढ़ई हैं। ताउली में 65 फ़ीसदी के आसपास मुस्लिम जाट, 10 फ़ीसदी मुसलमान (मुस्लिम जाट नहीं), 10 फ़ीसदी चमार और 15 फ़ीसदी में ब्राह्मण, बनिया, गड़ेरिया, झींवर, कुम्हार और वाल्मीकि हैं। शोरों बुढ़ाना तहसील के शाहपुर विकासखण्ड के अंतर्गत आता है। बुढ़ाना तहसील के विकासखण्ड शाहपुर में सिसौली पड़ता है। ताउली और नरोत्तमपुर मज़रा सदर तहसील के बघड़ा विकासखण्ड के अंतर्गत आते हैं।

[2] स्नोबाल सैम्पलिंग/प्रतिचयन का प्रयोग समाजशास्त्र के विद्यार्थी उन क्षेत्रों में करते हैं जहाँ पर उन्हें अपने उत्तरदाताओं की भौगोलिक स्थिति के बारे में पूरी तरह पता नहीं होता. इसमें पहले वे किसी एक व्यक्ति/उत्तरदाता से बातचीत करते हैं फिर वह व्यक्ति अपने समुदाय के अन्य लोगों के बारे में शोधकर्ता को बताता है. इस प्रकार शोधकर्ता एक समुदाय विशेष तक पहुँच बनाता है और उन लोगों पर ध्यान केंद्रित करता है जिनसे उन सवालों के जवाब खोजने होते हैं जो उसके मन में कौंध रहे होते हैं. इसके बाद वह उन्हीं लोगों से बार–बार मिलता/मिलती है. इसे फ़िक्स्ड सैम्पलिंग कहते हैं.



चुहरपुर इलाक़ा मुख्यतः जाटव बहुल है। यहाँ पर वाल्मीकि समुदाय की भी कुछ बसावट है। इस इलाक़े का जाटव समुदाय पिछले कई सालों से अपेक्षाकृत ऊँची जाति की हैसियत का दावा करता रहा है और संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के मुताबिक़ उसकी अनुभूति ऊर्ध्वगामिता की है। दलितों में वाल्मीकि समुदाय की स्त्रियों की तरह जाटव समुदाय की स्त्रियों से घरेलू काम करने की उम्मीद नहीं की जाती है। जाटव स्त्रियाँ ग़रीबी में फँसी हैं फिर भी वे इस तरह के काम करने को अपनी तौहीन समझती हैं।

प्राथमिक आँकड़ा संचयन के औज़ार

विषय की आवश्यकता और प्रकृति को देखते हुए यह अध्ययन मुख्य रूप से प्राथमिक आँकड़ों पर आधारित है। पहले जो अध्ययन किये गये थे, उनमें दलित स्त्रियों के सशक्तीकरण के बोध, उनके अनुभवों और उम्मीदों पर विशेष जानकारी का अभाव था। यही वजह थी कि इस अध्ययन को गुणात्मक प्रविधियों के आधार पर अंजाम दिया गया। इस तरह के अध्ययन में अपेक्षित विवरण और पैटर्न मात्रात्मक आँकड़ों के संग्रहण में नहीं आ पाते हैं। इसलिए सशक्तीकरण और अ-सशक्तीकरण के भोगे हुए अनुभवों के बीच अंतर करना मुश्किल हो जाता है।[3] दलित स्त्रियों में सशक्तीकरण और असशक्तीकरण के भोगे हुए अनुभवों को इस अध्ययन में समाहित करने के लिए उसे सिचुएशनिस्ट थियरी[4] के आलोक में देखा गया है। फ़ील्ड-नोट्स, अर्ध-प्रतिभागी अवलोकन, गहन साक्षात्कार, लिखित

---

[3] सुंदर सुरुक्कै (2007).

[4] सिचुएशनिस्ट थियरी का प्रयोग हम दलित स्त्रियों की दैनंदिन हसरतों की व्याख्या में कर रहे हैं. इस सिद्धांत में माना जाता है कि बाज़ार का हर जगह राज है. लोग न केवल उत्पादक और उपभोक्ता हैं बल्कि उनका प्रतिदिन का जीवन ही वस्तुओं के आपसी संबंधों पर टिका है. इसने लोगों को उनके जीवन से अलग कर दिया है. इसमें व्यक्ति अपने जीवन का क्रियाहीन दर्शक बन कर रह जाता है. वास्तव में सिचुएशनिस्ट थियरी चले आ रहे प्रतिमानों को एक झटका देती है. आरम्भ में हमें लग सकता है कि दलित स्त्रियाँ अन्य महिलाओं की तरह हैं लेकिन उन्हें जो उत्पीड़न और बहिष्करण का सामना करना पड़ता है, उसे किसी दी गयी श्रेणी से समझना मुश्किल है. इसे समाजवाद या ऐसे ही अन्य समतामूलक स्थापनाओं के आलोक में नहीं देखा जा सकता है बल्कि इसमें जाति और उत्पीड़न के भी आयाम समाहित हैं. कैरोल एलरिच (1977).

साक्षात्कार की व्याख्या, खुली और बंद प्रश्नावली के साथ ही महिलाओं के आख्यानों के विश्लेषण को शोध उपकरण के रूप में प्रयोग किया गया है।

अवधारणात्मक ढाँचा

दलित स्त्रियों के अनुभवों पर व्यापक शोध कार्य हुए हैं, लेकिन वे आधारीय सशक्तीकरण की तार्किक समझ के अभाव का शिकार हैं। इस तरह के ज़्यादातर अध्ययन स्त्रियों द्वारा झेले गये हिंसक कृत्यों को संरचनात्मक समस्या के तौर पर हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।[5] कुछ ऐसे भी अध्ययन हैं जो दलित स्त्रियों द्वारा किये गये प्रतिरोध को प्रतिबिम्बित करते हैं या उनके द्वारा सृजित प्रति-आख्यानों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दर्ज करते हैं।[6] कुछ अध्ययनों ने दलित स्त्री नायिकाओं के चित्रण के माध्यम से भी दलित जनता और उनकी हक़दारी की एक सांस्कृतिक पहचान को समग्र रूप से देखने का प्रयास किया है।[7] इसके अतिरिक्त हाल ही में भूगोल से जेण्डर-अध्ययन की ओर जाने वाले विद्वानों ने शहरी कामगार महिलाओं के बारे में सोचने का प्रयास किया है।[8] ये अध्ययन दलित स्त्रियों द्वारा सशक्तीकरण के बोध को उसकी सम्पूर्णता में पकड़ने में सक्षम नहीं हो पाए हैं। जहाँ तक सशक्तीकरण के बोध का संबंध है, यह सामान्य रूप में स्त्रियों की एक बड़ी श्रेणी के भीतर हाशिये की महिलाओं की उप-श्रेणियों को छोड़ता हुआ मालूम पड़ता है। यह विकास के मामलों में ऊपर से नीचे की ओर के नज़रिये का पालन करता दिखता है। यहाँ तक कि दलित स्त्रियों के अनुभवों और उसके व्यवहार के मामले में लिखा गया साहित्य विकास और सशक्तीकरण की भावनाओं के बारे में उनकी अपेक्षाओं को बाहर लाने का इच्छुक रहा है जिसके परिणामस्वरूप उनके ज़्यादातर अनुभव शोधकर्ता और पाठक द्वारा व्याख्या के लिए खुल जाते हैं। इस पृष्ठभूमि में किये गये अध्ययनों के विपरीत यह अध्ययन दलित स्त्रियों की अपेक्षाओं के साथ ही उनके सबवर्जन या फ़ितनाग़र रणनीतियों पर ध्यान केंद्रित करता है।

दलित स्त्रियों के जीवन-अनुभव : अलीगढ़ शहर में सशक्तीकरण के मायने

अलीगढ़ शहर में दलित स्त्रियों के बीच क्षेत्र-सर्वेक्षण करने के दौरान जिस एक चीज़ ने शोधकर्ता का ध्यान खींचा, वह थी सरकारी सहायता के माध्यम से खाद्य-सुरक्षा, घर, पेंशन-योजना, स्वास्थ्य-योजना और अन्य योजनाओं से दलित स्त्रियों में पनप रही आज़ादी की भावना। हालाँकि मुक्ति की यह भावना मानव विकास के मामले में महत्त्वपूर्ण है मगर दलित स्त्रियाँ हमारा ध्यान उन संरचनात्मक समस्याओं की ओर खींचना चाहती हैं जो उनके अ-सशक्तीकरण के लिए ज़िम्मेदार हैं। अलीगढ़ के चुहरपुर इलाक़े की पचहत्तर वर्षीय चमेली और पैंसठ वर्षीय शांति देवी बताती हैं कि हमारे पास तो बस राशन कार्ड है, पर राशन नहीं। हमें तो राशन मिल जाए, वही बहुत होगा और इसके अलावा हमें क्या चाहिए? ये स्त्रियाँ दलितों के जाटव समुदाय से हैं।

अपनी मूल जगह से विस्थापित अ-सशक्तीकरण की धारणा को लेकोव रेबेका आदि ने बोत्सवाना के शहरी ग़रीबों के बारे में अपने अध्ययन के ज़रिये हमारे सामने पेश किया है।[9] इन विद्वानों का मानना है कि हाशियाग्रस्त समुदायों का अगर ऊपर से नीचे की ओर सशक्तीकरण किया जाए तो इससे संबंधित दृष्टिकोण उन्हें अपनी स्थितियों को समझने में ज़रूरी मदद नहीं दे पाता और न ही यह

---

[5] ए.एस.जे. इरादुयम आदि(2011).

[6] गेल ओम्वेट (2006); विजया रामास्वामी (1996); शर्मिला रेगे (1998), पवार और मून (2008); रंगराव (2013).

[7] बद्री नारायण (2006).

[8] सरस्वती राजू और संतोष जतराणा (2016).

[9] रेबेका न्थोगो लेकोको और वान डर मेर्वे (2006).

दमनकारी परिस्थितियों की चुनौतियों का सामना करने के लिए उन्हें तैयार कर पाता है।[10] दलित स्त्रियों के मामले में तो स्थिति और बुरी हो जाती है। उन्हें न तो सरकारी योजनाओं के तहत हक़दारी लाभ समय से मिल पाते हैं और न ही वे अपनी निर्मम सामाजिक वास्तविकताओं को ही अच्छी तरह समझ पाती हैं।

अलीगढ़ शहर का चुहरपुर इलाक़ा मुख्यत: जाटव बहुल इलाक़ा है। यहाँ पर वाल्मीकि समुदाय की भी कुछ बसावट है। इस इलाक़े का जाटव समुदाय पिछले कई सालों से अपेक्षाकृत ऊँची जाति की हैसियत का दावा करता रहा है[11] और संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के मुताबिक़[12] उसकी अनुभूति ऊर्ध्वगामिता की है।[13] दलितों में वाल्मीकि समुदाय की स्त्रियों की तरह जाटव समुदाय की स्त्रियों से घरेलू काम करने की उम्मीद नहीं की जाती है। जाटव स्त्रियाँ ग़रीबी में फँसी हैं फिर भी वे इस तरह के काम करने को अपनी तौहीन समझती हैं। इसीलिए वे सार्वजनिक या निजी क्षेत्र में गैर–लांछित रोज़गार के अवसरों को तरजीह देती हुई दिखती हैं।

जाटव समुदाय की बीए अंतिम वर्ष की छात्रा अलका में प्रतिष्ठित और हीन एवं लांक्षित कार्यों की साफ़ समझ है। उसके लिए और उसकी तरह और अन्य लड़कियों के लिए कारख़ानों अथवा हैण्ड प्रेस में काम करने और छोटे–मोटे घरेलू कामों की अपेक्षा किसी कार्यालय में चपरासी बनना ज़्यादा वांछनीय है। मेरे शोध के दौरान ये लड़कियाँ हैण्ड प्रेस में काम कर रही थीं। इसमें तालों के कवर और लीवर की तरह चीज़ों को ढालने के लिए गाढ़ी स्याही के साथ हाथ से संचालित होने वाली एक छोटी सी मशीन पर काम करना पड़ता है। इसे वे अप्रतिष्ठित काम की तरह देखती–समझती हैं। बीस वर्षीय रत्नामती काम से लौट कर हैण्ड प्रेस की काली स्याही की छाप हथेलियों पर लिए खड़ी थी। उसने गर्व से बीए में अपने विषयों के बारे में बताया— इतिहास, अर्थशास्त्र और हिंदी। इन विषयों से उसकी एक अच्छा घर और अच्छी नौकरी पाने की हसरत पूरी हो सकती थी। अभी वह हैण्ड प्रेस पर काम करने के लिए प्रतिदिन पचास से साठ रुपये कमा पाती है।

जब मैं अलीगढ़ के दोधपुर इलाक़े में अनुसंधान कर रही थी, उसी दौरान एक घरेलू कामगार की हत्या हो गयी। इलाक़े के वाल्मीकि समुदाय के लोगों से बातचीत करते हुए यह पता चला कि क़ानून–व्यवस्था और प्रावधानों के बारे में उनकी जानकारी का स्तर काफ़ी नीचा था। यह बात वे स्त्रियाँ महसूस करती हैं। इसलिए वे पुलिस, ऊँची जातियों या उच्च वर्ग के किसी भी व्यक्ति से असुरक्षा महसूस कर रही थीं। बहुत स्पष्टता से बात करते समय भी ये स्त्रियाँ अपना नाम और अपने बारे में अन्य महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ छिपा रही थीं। वे डर रही थीं कि यदि उनका नाम–पता लोग जान जाएँगे तो उनकी शिनाख़्त हो जाएगी और वे अकारण प्रताड़ित की जा सकती हैं। उनके पास उस तरह के तंत्र और संसाधन नहीं थे जैसा ऊँची जाति के लोगों के पास होता है। सशक्तीकरण की भावना उनके अंदर उस दिन आएगी जब वे किसी भी एजेंसी द्वारा प्रताड़ना से डर के बिना अपनी पहचान साफ़ करने में सक्षम हो जाएँगी। एक स्त्री ने कहा कि आज़ादी तो केवल पुलिस और पैसे वालों के पास है। इन स्त्रियों के लिए सशक्तीकरण का मतलब है राज्य मशीनरी के प्रतिकूल रवैये से आज़ादी पाना। वे राज्य और उसके अमले द्वारा समान नागरिक के रूप में स्वीकार किये जाने की इच्छा रखती हैं और यह भी चाहती हैं कि राज्य उनकी आवाज़ और सरोकारों को सम्मान दे।

दोधपुर इलाक़े में कुछ जाटव परिवारों के साथ मुख्यत: वाल्मीकि समुदाय निवास करता है। इस इलाक़े के दोनों समुदायों की स्त्रियाँ घरेलू कामगार के रूप में काम करती हैं। अपनी सामाजिक स्थिति

[10] वही.

[11] जी.डब्ल्यू. ब्रिग्स (1920).

[12] एम.एन. श्रीनिवास (1952); क्रिस्तॉफ़ जैफ़्रेलो (2005).

[13] आवेन एम. लिंच (1974).

के साथ ही जानकारी की कमी के कारण दोधपुर इलाक़े के जाटव समुदाय की स्त्रियाँ चुहरपुर इलाक़े के जाटव समुदाय की स्त्रियों के विपरीत ग़रीबी और रोज़गार की सम्भावनाओं की कमी के कारण घरेलू कामकाज़ करने के लिए विवश हैं। चुहरपुर इलाक़े की स्त्रियाँ घरेलू कामकाज नहीं कर रही थीं। इसका कारण यह कि इनके इलाक़े के नज़दीक अलीगढ़ी ताला बनाने के कारख़ाने हैं। वे घरेलू कामकाज करने से कारख़ाने में जाने को तरजीह देती थीं।

अलीगढ़ के क्वारसी इलाक़े की दलित स्त्रियाँ महसूस करती थीं कि स्थायित्व और स्थिरता अच्छे जीवन और सुरक्षा के लिए ज़रूरी है। वे महसूस करती थीं कि घरेलू कामगार अथवा सफ़ाई कर्मचारी की तरह काम करना उन्हें शोषण और वित्तीय असुरक्षा की दृष्टि से मज़बूत नहीं बनाता। तीस वर्षीय शाही, पच्चीस वर्षीय अलका और पैंतीस वर्षीय अर्चना महसूस करती थीं कि यदि वे कम से कम बारहवीं कक्षा तक पढ़ी होतीं तो वे नर्स या शिक्षिका बनने की कोशिश कर सकती थीं। इन स्त्रियों और इनकी तरह अन्य महिलाओं से बातचीत से यह स्पष्ट हो गया कि वे उन कारकों की थोड़ी बहुत समझ रखती हैं जो स्त्रियों की उच्च सामाजिक गतिशीलता के लिए ज़िम्मेदार हैं। इस ख़ास मामले में उनके द्वारा शिक्षा को उन्नति के रास्ते की ओर ले जाने वाला एक औज़ार समझा जा रहा था। उन्होंने माँग की कि कम से कम बारहवीं कक्षा तक की शिक्षा महिलाओं के लिए ज़रूरी तथा मुफ़्त होनी चाहिए। मैंने भी ग़ौर किया कि ये महिलाएँ अपनी उस सामाजिक संरचनात्मक स्थिति की समझ रखती हैं जो उनकी ज़िंदगी में सुनहरे मौक़ों में बाधा बनती हैं। रोज़गार की इन सम्भावनाओं को बाधित करने वाली इस दशा को रोंकी राम ने भी पंजाब के दलित समुदाय पर अपने अध्ययन में रेखांकित किया है।[14]

क्वारसी की ही निवासी तैंतीस वर्षीय नीलम ने अपने काम की प्रकृति के बारे में अपने गुस्से का इज़हार किया। उसने कहा कि घरेलू नौकर के रूप में काम करने के कारण उसके पास कोई बचत नहीं है। वह स्वयं एक सहायता समूह की सदस्य है जिससे वह अपने पति के लिए ई-रिक्शा ख़रीदने के लिए पचास हज़ार रुपये कर्ज़ की उम्मीद कर रही है। उसका पैंतीस वर्षीय पति राजपाल एक ग़ैर-सरकारी समारोह हाल में मेहतर का काम कर रहा था। हाल ही में उसकी नौकरी चली गयी जिससे वह निर्माण कार्यों में मज़दूरी और घरेलू कामकाज करने के लिए मजबूर हो गया। एक बच्चा पैदा होने के साथ ही इस दम्पत्ति की वित्तीय अनिश्चितता उनके रोज़मर्रा के संघर्ष से जुड़ गयी। वे जवाहरलाल नेहरू मेडिकल हॉस्पिटल, अलीगढ़ में सफ़ाई कर्मचारी के पद के लिए आवेदन करना चाहते थे लेकिन दसवीं तक की न्यूनतम शिक्षा की माँग के चलते अयोग्य हो गये। उनके इस वृत्तांत से हम देख सकते हैं कि उनके सशक्तीकरण का बोध और ज़रूरतों की उनकी भावना उनके लिए स्थायी रोज़गार के अवसर के रूप में सामने आता है। नीलम ने आगे बताया कि मथुरा में उसके नैहर में वाल्मीकि समुदाय के बच्चे जब एक दुकान पर कुछ ख़रीदने जाते थे तो दुकानदार उनसे कहता था कि वे अपने सिक्के और नोट दूसरे डिब्बे में रखें। उसने अपने बच्चों के अनुभव साझा करते हुए बताया कि उन्हें राधाकृष्ण मंदिर में प्रवेश करने की अनुमति नहीं थी जबकि उनके मामा-मामी रोज़ सुबह उठ कर उसी मंदिर की साफ़-सफ़ाई करने जाते थे। उसने कुछ गर्व के भाव से कहा कि ईश्वर के सबसे नज़दीक तो वही लोग हैं जो उसके पूजा-स्थलों की सफ़ाई करते हैं, इसलिए उसके रिश्तेदार ईश्वर के सबसे नज़दीक के लोग हैं।

प्रति-आख्यान रचतीं दलित स्त्रियाँ

जब मैं क्वारसी के होली चौक इलाक़े में गयी तो देखा कि वाल्मीकि समुदाय की बस्ती की गलियाँ बिल्कुल अँधेरी हैं। उनकी माँग के बावजूद बिजली के खम्भे उस क्षेत्र में नहीं लगाए गये थे। इस समुदाय की स्त्रियों के मुताबिक़ इस तरह की लापरवाही उनकी सुरक्षा और निश्चिंतता को दाँव पर

[14] रोंकी राम (2007) : 34-35.

लगा रही थी। क्वारसी बाइपास रोड इलाक़े के होली चौक की दलित स्त्रियों की अपने अस्तित्वबोध और हसरतों की समझ की यह भाषा अधिक अभिव्यक्तिपूर्ण थी। उनमें से कुछ स्त्रियों ने बड़े गर्व से अपने प्रतिरोध का क़िस्सा अच्छी तरह से सुनाया।

क्वारसी के होली चौक इलाक़े की रहने वाली छब्बीस वर्षीय नीतू ने व्यावसायिक गतिविधियों को शुरू करने की इच्छा व्यक्त की। वह मेंहदी डिज़ाइन और सिलाई जैसे कौशल सीख रही थी। इसी के साथ वह इस तरह के स्व-रोज़गार की सम्भावनाओं के लिए जागरूकता और संसाधनों की कमी के कारण अपने प्रयासों में बाधा भी महसूस कर रही थी। नीतू के पति अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी में सफ़ाई कर्मचारी के रूप में काम करते थे। इंटरव्यू के दौरान एक दूसरी स्त्री ने भी ख़ुद के रोज़गार की अपनी इच्छा व्यक्त की। पैंतालीस वर्षीय गीता ने बताया, 'बिज़नेस से बढ़िया क्या होगा अगर अपना काम करके पैसा आने लगे तो। कोठियों के काम में बहुत डर भी हो गया है। अंदर क्या कर दे, कोई कुछ पता नहीं।' गीता अपने समुदाय की एक स्त्री की हाल ही में हुई हत्या का हवाला दे रही थी जो अलीगढ़ के विभिन्न इलाक़ों में घरेलू कामगार की तरह काम कर रही थी। दस वर्ष की उम्र में घरेलू कामगार की तरह काम करना शुरू करने वाली चालीस वर्षीय रजनी ने अपनी मालकिन की निरंकुश मानसिकता की वजह से नौकरी छोड़ दी थी। उसने अपनी नौकरी में जबरन काम कराने के एक अनुभव को साझा किया जिसको आख़िरकार उसने करने से इंकार कर दिया। यह उसकी मालकिन के लिए अस्वीकार्य था और उसने ज़बरदस्ती काम करवाने के लिए उसका हाथ पकड़ लिया। रजनी ने मालकिन को क़ानूनी नतीजों से डराया। रजनी के धमकी भरे शब्दों के कारण उसे राहत मिल सकी। रजनी ने मुझसे अपनी और अपने जैसी अन्य स्त्री-श्रमिकों की लाचारी के वास्तविक निवारण की भावनाओं को साझा किया।

अस्पताल में सफ़ाई कर्मचारी और घरेलू कामगार दोनों काम कर रही पैंतालीस वर्षीय उमा ने गर्व से अपने काम के बारे में बताया कि उसकी अस्पताल को ज़रूरत रहती है। उसने बताया कि सर्जरी वार्ड-तीन में ड्यूटी लगती है तो उसकी माँग बहुत बढ़ जाती है। 'अच्छा लगता है जब लोग बुलाते रहते हैं'। उमा को यह नौकरी अपने उस मालिक की मदद से मिली जिसके घर में वह काम करती थी। वह उनका आभार मानती थी लेकिन ठीक इसी समय वह इस बात को लेकर सचेत भी थी कि पैरवी करने के बदले में उसका मालिक उसका शोषक हो गया था। उसने कहा कि जब से उन्होंने अस्पताल में मौजूदा नौकरी के लिए उसकी मदद की है तब से उन्हें लगता है कि वे उनके जीवन के मालिक हैं। वे कभी-कभी उसके साथ अभद्र व्यवहार भी करते हैं। उमा ने कहा, 'लोगों को बस काम चाहिए हमसे हर समय। हमको इंसान नहीं समझते। घर पर काम करो तो चैन नहीं, अस्पताल में थोड़ी देर पानी पीने बैठ जाओ तो भी चैन नहीं'। काम के अनुकूल माहौल न होने के बावजूद उमा को अस्पताल में काम करने से अपनी थोड़ी सी हैसियत और परिवार के लिए कुछ करने का अहसास मिलता है। उमा का पति पियक्कड़ है इसलिए उसे ज़्यादातर पारिवारिक ज़िम्मेदारियों को भी निभाना पड़ता है।

उमा के जीवन-अनुभव के माध्यम से कोई देख सकता है कि दलित स्त्रियाँ कैसे निर्भरता के शोषणकारी संबंधों में फँसी रहती हैं। दलित स्त्रियों के लिए यह निर्भरता दोहरी है— पहली तो उन्हें उन लोगों का हुक्म बजाना पड़ता है जो नौकरी पाने में उनकी मदद करते हैं और दूसरी उस कार्यस्थल की मेहरबानी माननी पड़ती है जो उन्हें नौकरी देता है। यह उन्हें यौन शोषण सहित शोषण के चरम रूपों के अंदेशों का शिकार बना कर निर्भरता का एक दुष्चक्र तैयार करता है। चूँकि ये स्त्रियाँ उन रोज़गारों में हैं जिसमें विशेष कौशल की आवश्यकता नहीं होती है इसलिए वे समझती हैं उन्हें कोई भी आसानी से हटा देगा। यह भावना उन्हें शोषण के प्रति अधिक संवेदनशील बना देती है। इन महिलाओं के लिए सशक्तीकरण का बोध शोषक और आर्थिक संबंधों से मुक्ति में निहित है[15] और साथ ही वे अपने

[15] राधा सरकार और अमर सरकार (1920).

जीवन में एक ऐसे बोध की हसरत रखती हैं जिसमें उन्हें किसी पर आश्रित न होना पड़े।

घरेलू कामगार के रूप में काम कर रही कुछ स्त्रियों ने अपने वृत्तांतों के ज़रिये उत्पीड़न और बहिष्करण को धता बताने के प्रयासों का उल्लेख किया। उन्हें काम दिलाने वाले कुछ ठेकेदारों ने कहा कि उन्हें अपनी जाति छिपा लेनी चाहिए। कुछ लोगों ने उनके लिए अपमानजनक शब्द 'भंगन' का प्रयोग किया। उन्होंने जाति छिपाने से मना कर दिया। उन्होंने कहा, 'इज़्ज़त हमारा हीरा है। डायमण्ड समझते हैं न आप? पहले तो हम जात छिपा कर काम करें, बाद में पता चल जाए तो कोई हमें भंगन-भंगन कह कर बेइज़्ज़त करे और निकाल दे। यह हमें बर्दाश्त नहीं। जो करना है सही बात बोल कर करना है। जिसको काम कराना है कराए।' इस प्रकार हम देख सकते हैं जो जाति उनके बहिष्करण का आधार तय करती है, उसी को सार्वजनिक हलक़े में लाकर वाल्मीकि महिलाएँ अपनी सबलता का प्रमाण देती हैं।

क्वारसी की चालीस वर्षीय पुष्पा ने अपने साथ अपमानजनक व्यवहार की जानकारी साझा की। एक बार ईद के अवसर पर उसकी मालकिन ने उसे कुछ सामान दिया और जब उसने सामान हाथ में लिया तो वह बोली कि यह तो तुमने हमसे छीन कर लिया है। 'मुझे बहुत बेइज़्ज़ती महसूस हुई और मैंने कहा कि ऐसी बात है तो न मुझे आपका सामान चाहिए और न काम।' यह संवाद विवेक कुमार के उस तर्क को आगे बढ़ाता है कि काम करने से इंकार करने पर दलित स्त्रियों को उत्पीड़न से गुज़रना पड़ता है।[16] बाद में पुष्पा के प्रतिरोध और अपनी हैसियत पर दावा करने पर उसकी मालकिन ने उससे माफ़ी माँगी और उससे काम जारी रखने के लिए अनुरोध किया। पुष्पा और उनके साथ की अन्य महिलाओं ने कहा कि हमारे समुदाय को बहुत संघर्ष करना है। पूरे समुदाय की ओर से बात करने के इस प्रमाणिक तरीक़े को अधिकांश दलित लेखिकाओं की आत्मकथाओं और कथा वृत्तांतों में एक बुनियादी विशेषता के रूप में देखा जा सकता है।[17]

असंगठित क्षेत्र की महिलाओं को कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से बचाने के लिए 9 दिसम्बर, 2013 को यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण), नियम और अधिनियम, 2013 लाया गया। जब इसके प्रावधानों और शिकायतों के निवारण के प्रावधान की उन्हें जानकारी दी गयी तो वे इस तरह की सुविधा के बारे में नकारात्मक और निराश दिखीं।[18] इस अधिनियम में घरेलू स्त्री-कामगारों को भी यौन उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान की गयी है। इसमें सरकारी कार्यालयों से लेकर अस्पतालों और नर्सिंग होम की बात की गयी है। कार्यस्थल की परिभाषा देते समय अस्पतालों और नर्सिंग होम को एक अलग उपखण्ड में वर्णित किया गया है। इस अधिनियम को बनाते समय अस्पतालों और नर्सिंग होम को एक अंदेशे वाले स्थल के रूप में चिह्नित किया गया है। यह अनायास नहीं है कि अलीगढ़ की शहरी दलित स्त्रियाँ अस्पतालों और नर्सिंग होम में अपनी जीविका तलाशती हैं जहाँ उन्हें उत्पीड़न का सामना करना पड़ सकता है। इस अधिनियम के तहत जिन एजेंसियों तक इन महिलाओं को अपनी शिकायत लेकर जाना है, वहाँ तक पहुँचना आसान नहीं है और यदि वे पहुँच गयीं तो उन्हें अपनी नौकरी जाने का ख़तरा महसूस होता है। शहरी दलित स्त्रियों ने कहा कि यह सुविधाएँ पूरे समुदाय की समस्या को दूर करने में सक्षम नहीं हैं भले ही वे एक या दो मामलों का निपटारा कर दें। पैंतालीस वर्षीय गीता ने बताया, 'हमको नहीं जाना कहीं अपनी बात लेकर। हम इसको अपनी क़िस्मत मान कर चल रहे हैं अब तो। अगर हम कोई शिकायत कर भी दें किसी कोठी वाले की तो हमारा ही नुक़सान है क्योंकि यह सब करने के बाद न तो हमें कोई काम देगा और न हमारी बिरादरी में किसी और को

[16] विवेक कुमार (2005).

[17] बामा (2005).

[18] भारत का राजपत्र-असाधारण (1935).

आसानी से काम मिलेगा।' यहाँ हम देख सकते हैं कि ये स्त्रियाँ इस तरह के क़ानूनी प्रावधानों से अपने ठीक होने की आत्मपरक कल्पना भी नहीं कर सकती हैं। ज़ाहिर है कि ये प्रावधान इस तरह की हाशिये की स्त्रियों के बीच दीर्घकालिक समाधान के रूप में न्याय-वितरण में ज़्यादा आस्था और विश्वास पैदा करने में सक्षम नहीं हैं। यह सब उपलब्धि और उम्मीद की भावना के बीच एक खाई पैदा करता है।[19] कुछ ऐसी ही स्थिति हम आज़ादी के आंदोलन के दौरान दलित मानस में देख सकते हैं। डी.आर. नागराज़ एक आख्यान में बताते हैं कि गाँधी जब 1932 में उपवास कर रहे थे तो एक दलित बालक से कहा गया कि वह उन्हें संतरा खिलाकर उनका उपवास तुड़वा दे। वह बालक उनका उपवास समाप्त करवाने नहीं गया क्योंकि उसे भय था कि ऐसा करने से उसका और नुक़सान हो जाएगा। जो कुछ उसके पास है, वह भी चला जाएगा।[20]

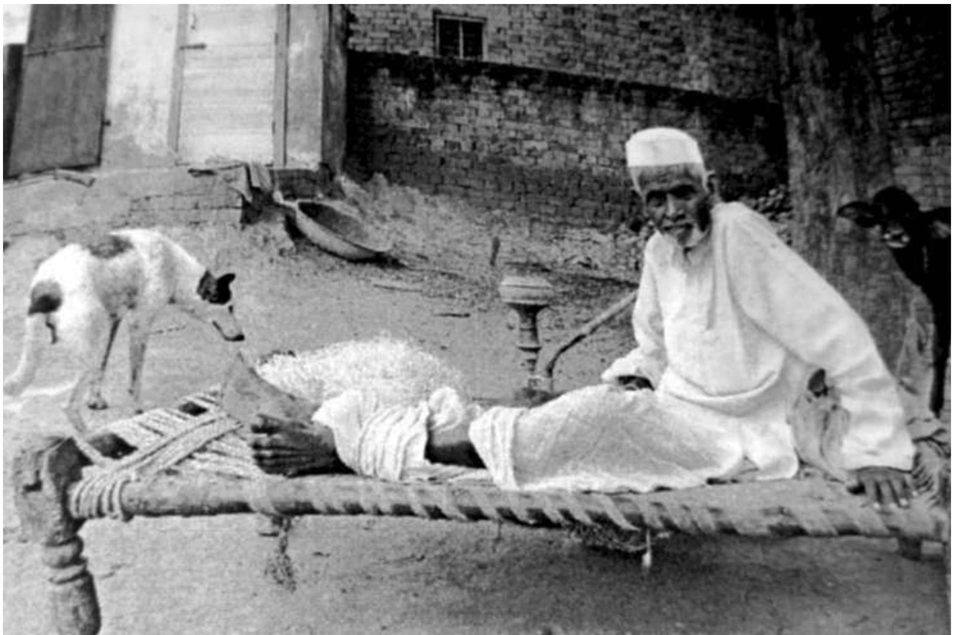


ऊँची जाति की स्त्री का मज़ाक उड़ाने के ज़रिये कमज़ोर जाति के लोग ऊँची जाति के पुरुषों और उनके प्रतीकों को गाली देते हैं और संतुष्ट हो जाते हैं। लेकिन ऐसा करने में औरत को दोनों तरफ़ से ज़िल्लत उठानी पड़ती है। कमज़ोर जातियों के लोग दलित स्त्रियों की ऊँची जाति की स्त्रियों के साथ तुलना करते हैं और उन्हें उच्च जातीय स्त्रियों पर तरजीह देते हुए अधिक शुद्ध व पवित्र बताने का प्रयास करते हैं।

ग्रामीण मुज़फ़्फ़रनगर में दलित महिलाओं के जीवन-अनुभव

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभुत्वशाली समुदायों की हर जगह मौजूदगी और चौकसी के कारण दलित समुदायों से बात करना आसान नहीं था। इसमें दलित स्त्रियों से सम्पर्क स्थापित करने की दिक़्क़तें और भी ज़्यादा थीं। मैंने दलित स्त्रियों से बातचीत और उनके बयान को दर्ज करने के दौरान इन अवरोधों को महसूस किया। अनुसंधान हेतु प्राप्त आँकड़ों को सुरक्षित रखने के लिए ऑडियो और वीडियो रिकॉर्डर जैसे मीडिया उपकरणों की आवश्यकता थी। इसलिए प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण के

[19] ल्यूक वॉन कॅपेन (1986).
[20] डी.आर. नागराज (2010).



पहले इस क्षेत्र के जाट अपने दबदबे के क्षेत्र में सिर्फ़ अपने समुदाय के लोगों को रखते थे, लेकिन बाद में उन्होंने अन्य कमज़ोर तबक़ों को इस क्षेत्र में लाने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में जाटों ने कमज़ोर जातियों और अन्य कमज़ोर तबक़ों के मुखियाओं को सम्मान दिया और उन्हें खाप पंचायत की न्यायाधिकारिक व्यवस्था के हिस्से के रूप में शामिल कर लिया।

बाद कमियों को दूर करने के लिए संबंधित क्षेत्र का दोबारा मुआयना किया गया। इन उपकरणों के सामने उत्तरदाताओं की अतिरिक्त सजगता और दबावपूर्ण बाहरी वातावरण इसे कठिन बनाता था। वस्तुनिष्ठता बनाए रखने के लिए लोगों के बयान दर्ज करने के प्रयास किये गये। प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण कई बार लोगों की बात दर्ज करना कठिन रहा। यहाँ तक कि अनौपचारिक बातचीत भी कई बार प्रभुत्वशाली समुदायों की मौजूदगी के कारण मुश्किल हो जाती थी। उदाहरण के लिए, मुझे एक बार प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ा जब मैं हैदरनगर में ओमी नामक दलित स्त्री के घर गयी थी। हैदरनगर 'देशखाप' के अंतर्गत आता है जो कि तोमरों की खाप है। तोमर एक जाट गोत्र है। ओमी का बेटा अपने ही समुदाय की पड़ोस की लड़की के साथ भाग गया था।

यह दर्ज करना आवश्यक है कि किस प्रकार लोग सर्वाधिक प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने लिए जगह बनाने का प्रयास कर रहे हैं। यही वे तरीक़े हैं जिनसे वे सफलता मिलने पर बिना कोई विद्रोह किये भविष्य में परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करेंगे। खाप के आदेशों का विरोध करने वाले लोगों का प्रतिरोध और संघर्ष खाप-समाजों की थोपी हुई सत्ता के मिथ्याभिमान और औचित्य पर चोट करता रहता है। जब इन छोटे प्रयासों को अंततः निष्पक्ष अथवा उदारतावादी दलों का वांछित समर्थन मिलता है तो उनका मनोबल बढ़ता है। यदि इन प्रयासों को महत्त्वपूर्ण समझा जाए, तो आने वाले समय में ये संस्थागत परिवर्तन के अग्रदूत साबित हो सकते हैं। यही वे लोग हैं जिनके

संघर्ष को संस्थागत और सामाजिक प्रोत्साहन की ज़रूरत है, और यह तभी हो सकता है जब समय पर परिवर्तन लाया जाए।

अपने क्षेत्र-कार्य के दौरान मैं ऐसे कई लोगों से मिली जिनके प्रयासों में स्थापित धारणाओं को बदलने या कम से कम अंदर से हिला देने की क्षमता है। ओमी के मामले का यहाँ विशेष उल्लेख आवश्यक है। ओमी एक सत्तर वर्षीय विधवा है जिसका बेटा उसी गाँव की एक लड़की के साथ भाग गया था। भागने के बाद उसका बेटा कभी उस इलाक़े में नहीं दिखा। गाँव के लोगों का मानना है कि उसका बेटा पंचायत द्वारा भागे हुए जोड़ों पर जारी किये जाने वाले फ़रमानों के डर से वापस नहीं आया। ओमी को विभिन्न प्रकार के सामाजिक बहिष्कारों का सामना करना पड़ा। किसी को उसके घर में घुसने की इजाज़त नहीं थी और न ही उसे अपने घर से बाहर निकलने की अनुमति थी। यहाँ तक कि उसके घर में जाने या उसके साथ खेतों में काम करने या उसके लिए पानी लाने पर भी पाँच हज़ार रुपये का जुर्माना लगा दिया गया था। जब लोगों को यह एहसास हुआ कि वह इतनी बूढ़ी हो चुकी है कि अब और ज़्यादा बहिष्कार की यातनाएँ नहीं झेल सकती तो उन्होंने बहिष्कार की शर्तों को ढीला कर दिया। उन्होंने सख़्त आदेश दिया कि वह अपने बेटे को दोबारा कभी नहीं देखेगी और यदि उसका बेटा उसके घर के आस-पास या गाँव में नज़र आया तो उसे गोली मार दी जाएगी।

जब मैं ओमी से मिलने गयी तो उसने भी वही कहानी सुनाई। उसने आगे यह भी जोड़ा कि किसान समुदाय, जैसे कि जाट, ने उसके जीवन-संघर्ष में उसकी मदद भी की। अगर वे न होते तो वह जीवित भी न रह पाती। अपनी दबी-ढँकी बातों में थोड़ी सी मिश्री घोलते हुए उसने कहा कि उसे इस गाँव में किसी समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। बल्कि ओमी तो लगातार अपने बेटे की करतूत को लेकर गुस्सा दिखा रही थी। जाटों के प्रति इस क़िस्म की कृतज्ञता का प्रदर्शन देखकर मैं पूरी तरह स्तब्ध थी। आख़िरकार इसी जाट समुदाय ने उसके ऊपर भीषण सामाजिक बहिष्कार थोपे थे। उसके सामाजिक व्यवहार के मानक निर्धारित किये गये थे। ये मानक उस क्षेत्र में प्रभावशाली गुटों के लिए सांस्कृतिक मूल्य बन गये हैं। पहले इस क्षेत्र के जाट अपने दबदबे के क्षेत्र में सिर्फ़ अपने समुदाय के लोगों को रखते थे, लेकिन बाद में उन्होंने अन्य कमज़ोर तबक़ों को इस क्षेत्र में लाने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में जाटों ने कमज़ोर जातियों और अन्य कमज़ोर तबक़ों के मुखियाओं को सम्मान दिया और उन्हें खाप पंचायत की न्यायाधिकारिक व्यवस्था के हिस्से के रूप में शामिल कर लिया।

समस्या यह है कि जब भी कोई निर्णय किसी विशेष जाति के चौधरी द्वारा लिया जाता है तो वास्तव में वह हमेशा ही प्रभुत्वशाली समूह की सुविधा के अनुसार होता है। कठोर निर्णय, जैसे कि 'नैतिक मूल्यों' की हिफ़ाज़त के लिए सामाजिक बहिष्कार, अधिकतर समाज के प्रभुत्वशाली तबक़े द्वारा ही लिए जाते हैं— यहाँ यह तबक़ा जाट समुदाय का है जिसकी जातिगत परिषद पूरे इलाक़े में सर्वोच्च मानी जाती है। इस इलाक़े का सांस्कृतिक विन्यास अधिकतर प्रभुत्वशाली समूहों और संस्थाओं की कथाओं और गाथाओं द्वारा निर्मित हुआ है। इन विन्यासों की रूपरेखा प्रभुत्वशाली वर्ग को लाभ पहुँचाने के लिए तैयार की गयी है। इसी के द्वारा वे पूरे इलाक़े में अपनी वैधानिकता और अपने पारम्परिक प्राधिकार को चुस्त-दुरुस्त बनाए रखने में सक्षम हो पाते हैं। किसी व्यक्ति या समुदाय की आदतों के स्वरूप में थोड़ा भी बदलाव उस इलाक़े में उनके प्राधिकार के लिए हानिकारक हो सकता है। अपने क्षेत्र में उनका आचरण औपनिवेशिक हुक़्मरानों जैसा ही दिखाई पड़ता है।[21] उनकी पूरी व्यवस्था का स्वरूप उपनिवेशों जैसा है और वे अपने न्यायाधिकार का दायरा हमेशा बढ़ाते रहने का प्रयास करते रहते हैं।

ओमी के मामले से मुझे यह भी मालूम हुआ कि कैसे हाशिये के समुदायों की स्त्रियाँ सामाजिक बहिष्कार से जूझ रही हैं। इस सामाजिक बहिष्कार को सामाजिक दण्ड न समझ कर दलित समुदाय

[21] एम.सी. प्रधान (1996) : 95.

और प्रभुत्वशाली समुदायों में पितृसत्ता और सत्ता की अवधारणा के मेल के रूप में देखा जाना चाहिए। ख़ुद के साथ हुए बहिष्कार के बावजूद ओमी द्वारा जाटों की प्रशंसा ने मुझे हैरान तो कर दिया, पर जैसे ही बातचीत ख़त्म हुई और मैं ओमी के घर के बाहर निकली, उसने एक छोटा बच्चा भेज कर मुझे वापस बुलाया। उसके इस रहस्यमय व्यवहार ने मुझे और उलझन में डाल दिया। जब मैं ओमी के घर में दोबारा गयी तो उसने पास खड़े बच्चों से दरवाज़ा कस कर बंद करने के लिए कहा जिससे हमारी बातों के बीच कोई भी घर न आ सके। मैंने तब पूरी परिस्थिति अच्छी तरह समझ ली जब ओमी ने मुझे यह बताना शुरू किया कि मुझसे बात करते समय वह अपनी भावनाओं को खुल कर नहीं रख पा रही थी क्योंकि गाँव के कुछ जाट और अन्य गाँव वाले वहीं पास में खड़े थे। वह उन्हें नहीं बताना चाहती कि अपने बेटे के चाल-चलन के बारे में वह ख़ुद क्या सोचती है।

जब वह मेरे साथ अकेली थी तो उसने मेरे सामने अपना दिल निकाल कर रख दिया और कहा कि ज़िंदा रहने का उसके पास बस यही एक रास्ता है। उसने कहा, 'किसे अपना बेटा अच्छा नहीं लगता?' लेकिन उसे लोगों को, और ख़ासकर जाटों को, यह दिखाना पड़ता था कि उसने अपने बेटे के साथ सारे संबंध ख़त्म कर लिए हैं और उसके पास उसका कोई अता-पता नहीं है। लेकिन सच्चाई यह थी कि ओमी को पता था कि वह कहाँ रह रहा है और उसकी बातों से मुझे यह लगा कि वो फ़ोन के माध्यम से अपने बेटे से सम्पर्क में थी। उसने क़बूल किया कि जाट किसानों ने दरअसल उसकी ज़िंदगी को नरक बना कर रख दिया है और बहिष्कार के आदेश पारित करवाने में लड़की के घरवालों का साथ दिया। उसने यह भी जोड़ा कि वे उसे अपने खेतों में काम नहीं देते थे जिससे उसका जीवनयापन और मुश्किल हो गया था। उस इलाक़े में सामान्यत: कमज़ोर जाति की स्त्रियाँ अधिक सम्पन्न जाट किसानों के खेतों में काम करती हैं। ओमी को अपने बेटे के कृत्य के कारण जीविकोपार्जन के कई मौक़ों से हाथ धोना पड़ा। ओमी के लिए नियमों में अब ढिलाई दे दी गयी है और उसने किसानों के खेतों में जाना शुरू कर दिया है। गाँव वाले भी अब उसके घर आते-जाते हैं। यह सब तब हुआ जब लोगों को यह विश्वास हो गया कि ओमी ने अपने बेटे के साथ संबंध तोड़ लिए हैं। इस प्रकार ओमी ने आदेशों के प्रति आज्ञाकारिता दिखाकर अपने जीवन के लिए समझौता किया। औरतों के सीखने के तरीक़ों पर एक प्रेक्षण के अनुसार, 'औरतें सत्ताधारियों के प्रति अंधी आज्ञाकारिता को मुसीबतों से दूर रहने और अपनी उत्तरजीविता सुनिश्चित करने के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मानती हैं।'[22]

हालाँकि जाट समुदाय ने ओमी के बहिष्कार में अपना हाथ होने से इंकार कर दिया, लेकिन इस समुदाय की यह भूमिका पूरे इलाक़े को अच्छी तरह मालूम है। साथ ही, जैसा कि ओमी ने क़बूल किया कि जाटों ने ख़ुद इस बहिष्कार को उकसाया और इसका समर्थन किया। इससे पता चलता है कि प्रभुत्वशाली समूहों के निर्णयों से कितनी जटिलताएँ उत्पन्न हो सकती हैं। खाप जैसे प्रभुत्वशाली समूह सामाजिक, व्यावहारिक और सांस्कृतिक अंकुश को अपने सदस्यों के विवाह और उनकी यौनिकता को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग करते हैं— विशेषत: स्त्रियों और उनके सामाजिक, भौगोलिक अथवा प्रभाव क्षेत्र में आने वाले हाशिये के तबक़ों के ऊपर। एक घटना का उल्लेख ज़रूरी है जिसे एक पत्रकार ने मुझसे साझा किया था। दलित नौजवानों की तथाकथित अकड़ के विरोध में एक पंचायत बुलाई गयी। पंचों ने दलित चौधरी से अपने नौजवानों को बरजने को कहा तो दलित चौधरी ने सिर नीचा करके कहा कि हुजूर यह आपके ही ख़ून हैं, अन्यथा दलितों में ऐसी अकड़ कहाँ होती? फिर उस पंचायत को वहीं समाप्त कर दिया गया कि कहीं उच्च वर्ग की ही बदनामी न हो जाए। यह बताता है कि प्रभुत्वशाली सामाजिक स्पेस में दलित स्त्रियाँ बलात्कार और दैहिक ताबेदरी के अंदेशों की शिकार होती हैं।

---

[22] मैरी फ़ील्ड बेलेंकी (1986) : 28.

सिसौली की साठ साल की ओमकली ज़मादार समुदाय से संबंधित थी। वह बोलना नहीं चाहती थी क्योंकि जाट लोग सारा समय मोटर साइकिल पर उसके आसपास घूम रहे थे। जब वह मुझसे बात कर रही तो वे उसे घूर रहे थे। वे हम तक आये और उन्होंने पूछा कि क्या मामला है। मुझे उनसे माफ़ी माँगनी पड़ी और हमें अकेले में बात करने देने के लिए यह कह कर अनुरोध करना पड़ा कि हमारी बातचीत जाट मर्दों से संबंधित नहीं है। वे लोग वहाँ से तो चले गये लेकिन कुछ दूरी पर जाकर खड़े हो गये जिससे ओमकली असुविधा महसूस करती रही। फिर उसने बहुत धीमी आवाज़ में कुछ फ़ुसफ़ुसाया। मैंने सुना कि वह कह रही है 'मुखिया के यहाँ ले चलूँ, वो हमारा आदमी है।' मैं भी सिसौली नगर पंचायत के मुखिया से बात करना चाहती थी तो उसने संकेत दिया कि वह मुझे मिलवाएगी।

ओमी और ओमकली की स्थिति उन अधिकतर दलित स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जिन्हें पहचान, प्रतिनिधित्व और पुनर्वितरण की ज़रूरत है। सरकार की सारी योजनाओं में ऐसी महिलाओं की दशा में बदलाव कर सकने के सामर्थ्य की कमी साफ़ दिखाई पड़ती है। सुखदेव थोराट दलितों के लिए परिसम्पत्तियों के सृजन की वकालत करते हैं[23] लेकिन इसे दलित स्त्रियों को ध्यान में रख कर किया जाना ज़रूरी है। इसमें भूमि सशक्तीकरण का प्रमुख औज़ार हो सकता है। दक्षिण अफ़्रीका में महिलाओं के सशक्तीकरण में भूमि के पुनर्वितरण की भूमिका को रेखांकित किया गया है। वहाँ ग़रीब ग्रामीण महिलाओं को भूमि पर मालिकाना हक़ देकर उन्हें सक्षम बनाने की कोशिश की जा रही है।[24] इसी प्रकार से भारत के राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के ऊपर अत्याचार रोकने से संबंधित अपनी एक रिपोर्ट में इस बात पर ज़ोर दिया कि दलितों को भूमि पर अधिकार दिया जाना चाहिए।[25] माना जा रहा है कि महिलाओं की दशा उत्तराधिकार नियमों में बदलाव से सुधर जाएगी। लेकिन सामाजिक-आर्थिक जाति आधारित जनगणना-2011 बताती है कि भारत में 54 प्रतिशत दलितों के पास जब ज़मीन नहीं है और वे दिहाड़ी मज़दूरी पर निर्भर हैं।[26] ऐसी सूरत में यह क़ानून बहुत सीमित हो जाएगा।

जहाँ अधिक संख्या में दलित समुदाय के लोग थे वहाँ पर भी बातचीत आगे बढ़ाने में समस्याएँ आयीं। वहाँ लोग बातचीत के उद्देश्य को लेकर संदेह कर रहे थे। उन्हें यह लगता था कि मुझे उनसे कुछ मसालेदार सूचना चाहिए, जिससे मैं शक्तिशाली प्रभुत्वशाली जाट समुदाय के ख़िलाफ़ कुछ कह सकूँ। उन्हें लगता था कि उन्हें मुझसे व्यक्तिगत रूप से संवाद करने के बजाय समूह में बात करनी चाहिए, जिससे कि सबसे मुखर व्यक्ति उन्हें रोक सके जो बहुत ज़्यादा जानकारी देने की कोशिश कर रही हो। ज़्यादातर जवान स्त्रियाँ जब किसी चीज़ को विस्तार से बताने का प्रयास करती थीं तो उन्हें पुरुषों और बुज़ुर्ग सदस्यों द्वारा ऐसा करने से बरज दिया जाता था। दलित समुदाय में यह एक सामान्य समझ प्रचलित थी कि बाहर से आये लोग उनके बारे में उनके फ़ायदे के लिए नहीं लिखते बल्कि उन पर लिख कर ख़ुद लाभान्वित होना चाहते हैं। ज़ाहिर है कि उन्हें पता था कि उनके बारे में व्यर्थ लिखा जा रहा है।

जब मैंने खाप क्षेत्र के दलित समुदायों की कुछ औरतों से बात की तो मैंने पारम्परिक आदर्शों से हट कर उनके अंदर कुछ छुपी हुई हसरतों को महसूस किया। एक दलित लड़की ने मुझे जो कुछ बताया वह मैं किसी जाट स्त्री से कभी नहीं सुन सकती थी। लोगों के साथ प्रेम विवाह पर एक अनौपचारिक बातचीत के दौरान अचानक पीछे से एक अप्रत्याशित आवाज़ आयी, 'हाँ, क्यों नहीं,

[23] http://www.epw.in/journal/2002/06/special-articles/oppression-and-denial.html 09-05-2014 को देखा गया.

[24] http://www.gov.za/sites/www.gov.za/files/landgender_0.pdf 11 मार्च, 2014 को देखा गया.

[25] http://nhrc.nic.in/Documents/Publications/reportKBSaxena.pdf 6 अगस्त, 2014 को देखा गया.

[26] http://secc.gov.in/stateSummaryReport 6 अगस्त, 2014 को देखा गया.

अगर हमारा मन करेगा तो हम प्रेम विवाह कर सकते हैं।' यहाँ यह भी बताते चलें कि उस लड़की ने इसे बहुत आत्मविश्वास के साथ नहीं कहा और न ही वह इस विषय पर बहुत खुल कर बात कर सकती थी। उसने यह सिर्फ़ इसलिए कहा क्योंकि उसे लगा कि वह पहचानी नहीं जाएगी और अज्ञात रह पाएगी। लेकिन फिर भी बातचीत में मैंने ब्रायन एटबेरी के कल्पना के सिद्धांत की एक झलक महसूस की जिसमें वे 'स्वयं के एक अधिक रुचिकर और महत्त्वपूर्ण संस्करण के लिए अपनी पहचान के आदान-प्रदान की इच्छा' के बारे में बात करते हैं।[27] लेकिन जब मैंने उसे आगे आकर अपना चेहरा दिखाने को कहा तो वह तैयार नहीं हुई। वहाँ पर उपस्थित दूसरे लोगों ने उसके कहे गये पर नाराज़गी और ताज्जुब प्रकट किया। बाद में जब वह मेरे पास आयी तो उसने कहा कि उसका मतलब कुछ और था। इस प्रकरण को कम से कम सूक्ष्म स्तर पर ही सही, पर एक हल्के प्रति-आख्यान के तौर पर देखा जा सकता है जो उस सामूहिक कल्पना के लिए एक ख़तरा बन सकता है जो किसी सांस्कृतिक समूह के लिए आधार का काम करता है।

दलित भी उसी प्रकार भाषा की खोज करते हैं जिसका प्रयोग प्रभुत्वशाली तबक़े पहले से करते आ रहे हैं। वे अपनी अस्मिता मज़बूत करने और आत्मविश्वास का एक छद्म स्तर प्राप्त करने के लिए प्रभुत्वशाली तबक़ों के स्त्री-प्रतीकों का मखौल भी उड़ाते हैं। इसमें शुद्धता और यौन शुचिता का आग्रह बरक़रार रहता है। वाल्मीकि लोग जाट लोगों को चिढ़ाने के लिए संस्कृत महाकाव्य *रामायण* की कहानियों का इस्तेमाल यह कहते हुए करते हैं कि जाट लोग ख़ुद को बड़ा भारी योद्धा और श्रेष्ठ बताते हैं लेकिन अपनी औरतों तक को नियंत्रित नहीं कर सकते। वे सीता पर, अपने दो पुत्रों में से एक को संत वाल्मीकि से प्राप्त करने का आरोप लगाते हैं जब वे उनके आश्रम में शरण लिए हुए थीं। यहाँ ऊँची जाति की स्त्री का मज़ाक उड़ाने से कमज़ोर जाति के लोग ऊँची जाति के पुरुषों और उनके प्रतीकों को गाली देकर संतुष्ट हो जाते हैं। लेकिन ऐसा करने में औरत को दोनों तरफ़ से ज़िल्लत उठानी पड़ती है। कमज़ोर जातियों के लोग दलित स्त्रियों की ऊँची जाति की स्त्रियों के साथ तुलना करते हैं और उन्हें उच्च जातीय स्त्रियों पर तरजीह देते हुए अधिक शुद्ध व पवित्र बताने का प्रयास करते हैं।

यह जाटव जैसे हाशिये के समूहों का प्रभुत्वशाली समूहों के ख़िलाफ़ प्रतिरोध और उनको चोट पहुँचाने का तरीक़ा है। मेरी बातचीत के दौरान इस समुदाय के लोगों ने दावे के साथ कहा कि उनकी औरतें असली सती यानी पवित्रता का प्रतिमान हैं। उन्होंने कहा कि उनकी सतियाँ निस्संदेह अविवाहित हैं और अक्षतयोनि हैं, जो कि उन्हें सबसे शुद्ध बनाता है। नरोत्तमपुर मज़रा गाँव के एक युवक राजू ने कहा, 'हमारी वाली सती असली सती हैं। जो शादी करके पति के साथ मर जाए वो कैसे हो गयी सती? हमारी सती गंगाजल जैसी होती थीं और समाज के लिए काम भी करती थीं।' हाशिये के समूहों ने सती की समानांतर परंतु भिन्न प्रतीकात्मक रचना करके न सिर्फ़ प्रभुत्वशाली विचारधारा की थोपी हुई सामाजिक-सांस्कृतिक धारणाओं का प्रतिरोध किया है बल्कि अपने लिए एक वैचारिक सह-सामाजिक स्थान भी हासिल किया है। इस प्रक्रिया में उन्होंने सती के बारे में स्थापित दृष्टिकोण को भी तोड़ा-मरोड़ा है। क्षेत्र के प्रभुत्वशाली और हाशिये के समुदायों की 'सती' के साथ जुड़ी शुद्धता की धारणा भी एक दूसरे से भिन्न है। सती की अवधारणा में इसी भिन्नता के माध्यम से कमज़ोर तबक़े द्वारा एक प्रति-आख्यान रचा जाता है। दलित 'सती' अविवाहित है और इसलिए 'इंद्रियनिग्रह' का प्रतीक है।

प्रति-आख्यान का उपर्युक्त तरीक़ा प्रति-आख्यान के औज़ारों और उसके रूप को लेकर एक जटिल समस्या खड़ा करता है। ऊपर के प्रसंग में यह इंगित करना आवश्यक है कि हाशिये के समूहों ने सती के आख्यान की रचना की। सती के आख्यान की यह रचना प्रभुत्वशाली जातियों के सती-

---

[27] ब्रायन एटबेरी (2013) : 82.

आख्यान से बिल्कुल भिन्न है। लेकिन उन्होंने सती, इंद्रिय-निग्रह और शुद्धता की रूढ़िवादी अवधारणा को अनजाने में और प्रसारित कर दिया। दूसरे शब्दों में प्रभुत्वशाली जातियों की समझ को बदलने के लिए अपनाए गये हथियार वही हैं जो उन जातियों के द्वारा सालों तक इस्तेमाल किये गये थे।

यहाँ आपस्तम्ब धर्मसूत्र से इन मुद्दों का मिलान किया जा सकता है। ब्राह्मणों द्वारा थोपी गयी कट्टरता के अधीन भारतीय समाज के एकरूप माहौल में आपस्तम्ब ने धर्म की परम्परा में एक पूर्णत: भिन्न रुख अपनाया गया।[28] आपस्तम्ब के धर्मसूत्र को स्त्रियों का पक्षधर कहा गया है क्योंकि यह पुत्रियों के सम्पत्ति पर अधिकारों को मान्यता देता है[29] और विवाह के पश्चात् स्त्री और पुरुष द्वारा सम्पत्ति की साझी अभिरक्षा की बात करता है।[30] फिर भी आपस्तम्ब स्त्रियों को परम्परा-रक्षक मानने पर ज़ोर देते हैं और अपने श्रोताओं से कहते हैं कि जब वे धर्मशास्त्रों से सब कुछ सीख लें तो उन्हें स्त्रियों से कुछ रीति-रिवाज सीखने चाहिए।[31] इस प्रकार स्त्रियाँ यहाँ सांस्कृतिक और सामुदायिक मूल्यों की अभिरक्षक मानी गयी हैं। लेकिन दलित स्त्रियों के मामले में उन्हें दोहरा भार उठाना पड़ता है— ऊँची जाति के पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रहों का और अपने समुदाय की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए उनके मूल्यों का।

आत्मरक्षा के उपर्युक्त तरीक़े औरतों की स्थिति को और ख़राब करते हैं। वे उनकी स्वच्छंदता पर अवरोध लगाते हैं और व्यापक स्तर पर समाज की मानसिकता पर प्रभाव डालते हैं। यहाँ तक कि प्रति-आख्यान रचने वाले पाठों में भी या तो महिलाओं की गरिमा की सुरक्षा के लिए या उन्हें सामने लाने के लिए पितृसत्तात्मक साधनों और उपायों का ही प्रयोग किया गया है। प्रति-आख्यानात्मक लेखन को, परिप्रेक्ष्य और काल की पृष्ठभूमि के साथ देखने पर सराहा ही जाना चाहिए, लेकिन यह भी ज्ञात होना चाहिए कि स्त्रियों के अधिकारों और गरिमा की इस प्रकार की जाने वाली रक्षा के विपरीत दूरगामी प्रभाव होते हैं। हम इसे विशेषत: खाप समाज के परिप्रेक्ष्य में और साधारणत: समस्त भारतीय समाज में देख सकते हैं। उपर्युक्त उद्धरणों में सती की परिभाषाएँ इस तथ्य से निकलती हैं कि स्त्रियाँ सामान्यतया और कमज़ोर जाति की महिलाएँ विशेषकर स्वयं दूषित और दूसरों को दूषित करने वाली समझी जाती हैं। ऐसी स्त्रियाँ ऊँची जातियों द्वारा शोषण का शिकार रही हैं। ग्रंथों से प्राप्त विवरणों और कथाओं के माध्यम से ऐसे शोषण के तरीक़ों के बारे में जाना-समझा गया है।[32] इसलिए इन जातियों और पहले से अछूत रहे लोगों द्वारा अपनी सती को सबसे विशुद्ध और पवित्र व्यक्तित्व के रूप में दर्शाना ऊँची जातियों के मौजूदा यथार्थ में एक चोट मारने जैसा है। यहाँ हम उन दावों को देखते हैं जो प्रभुत्वशाली लोगों के यथार्थ-वर्णन की काट बन सकते हैं।

इन दावों के साथ समस्या यह है कि, यद्यपि वे महिलाओं के लिए रचनात्मक और हितकारी प्रतीत होते हैं, लेकिन वास्तव में वे स्त्री को विशुद्धता और अपवित्रता की उन्हीं ब्राह्मणवादी धारणाओं और दावों में ही और क़ैद कर देते हैं जिनसे मुक्ति की वे कामना करती रही हैं। बिना इनकी भाषा और व्याख्या में परिवर्तन लाए ऐसे विद्रोह उस पूरे समूह के लिए आगे और समस्या खड़ी कर सकते हैं जो सभी समुदायों में हमेशा ही हाशिये पर रहा है। वह समूह है स्त्रियों का। स्थिति और गम्भीर हो जाती है जब दलित समुदाय की स्त्रियाँ सामाजिक संरचना में अपने निम्नतम स्तर पर होने का कारण समझने में असमर्थ रहती हैं। दलित स्त्रियों के वास्तविक सशक्तीकरण के लिए प्रभुत्वशाली जातियों

[28] आपस्तम्ब आरम्भिक भारत के प्राचीनतम धर्मशास्त्रियों में से से एक हैं. उनका समय तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व माना जाता है. पैट्रिक ओलिवेल (2017) : 51.

[29] पैट्रिक ओलिवेल (1999) : 57. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.14.4.

[30] वही : 72, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.29.3 .

[31] वही : 72, आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.15.9; 2.29.11-15.

[32] डेविड एन. लारेंजन (1991) : 49.

के ख़िलाफ़ विरोध दर्ज करने के प्रयुक्त साधनों, वर्गों और भाषा को बदलना होगा। जब विरोध और समझौते उसी प्रकार होने लगते हैं जैसे वे खाप क्षेत्रों में हो रहे हैं तब आपस में चर्चा करने और बाँटने पर ये 'निजी और व्यक्तिगत अनुभव तेज़ी से साझा उम्मीदों और लक्ष्यों के रूप में' प्रस्फुटित होते हैं।[33] नैंसी वाकर द्वारा करोलिन गोल्ड हीलब्रन की 'अस्वीकार्य कल्पनाओं'[34] के बारे में की गयी टिप्पणी के बारे में व्यक्त किये गये विचार अन्य प्रसंगों में भी सच साबित होता है। वाकर के मुताबिक़ मूल्यों और परम्पराओं पर पुनर्विचार की माँगें कथित यथार्थों और बदले में यथास्थितियों को चुनौती देने वाली होती हैं।

निष्कर्ष

चूँकि स्त्रियों का वर्ग कोई एकाश्मिक वर्ग नहीं है अत: यह समझने की ज़रूरत है कि विभिन्न वर्गों की महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए उपाय और प्रावधान काफ़ी अलग-अलग करने पड़ेंगे। सबके लिए एक जैसे उपाय या समाधान ढूँढ़ना उल्टे नतीजों वाला हो सकता है। सशक्तीकरण के लिए ऊपर से नीचे की ओर का एकमुश्त दृष्टिकोण वांछित परिणाम देता हुआ नहीं दिखाई देता। हाशिये की स्त्रियों के जीवन में परिणामदायी बदलाव लाने के लिए राज्य प्रायोजित योजनाओं में दलित स्त्रियों के लिए गुंजाइश निकाली जानी चाहिए और यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उन्हें परिसम्पत्ति निर्माण में भागीदारी दे कर ही सक्षम बनाया जा सकता है। इससे वे उस दुष्चक्र से निकल पाएँगी जो शोषणकारी और निर्भरतामूलक व्यवस्थाएँ उनके ऊपर लाद देती हैं। जैसा कि मेरे फ़ील्ड-वर्क का अनुभव दिखाता है कि यदि दलित स्त्रियों को अपनी मुक्ति-परियोजना को आगे बढ़ाना है तो उन्हें उस भाषा और प्रतीकों का परित्याग करना होगा जिसे उन्होंने प्रभुत्वशाली वर्गों से ग्रहण कर लिया है। दलित स्त्रियों को 'अन्य' मानने की प्रवृत्तियों पर तब तक रोक नहीं लग पाएगी जब तक उनके अनुभवों की विशिष्टता को पहचान कर उसे महत्त्व नहीं दिया जाता है, और ऐसे विधिक प्रावधान नहीं किये जाते जो उनकी विशेष सामाजिक दशा से उपजे हाशियाकरण को सम्बोधित करते हों। अकादमिक स्तर पर अभी दलित स्त्रियों के भोगे हुए यथार्थ को समझने के लिए एक सतत और बृहद नृजातीय व फेनोमेनोलॅजिकल अध्ययन की आवश्यकता है।

संदर्भ :

ओवेन एम. लिंच (1974), *द पॉलिटिक्स ऑफ़ अनटचेबिलिटी : जाटव्ज़ ऑफ़ आगरा,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली.

उर्मिला पवार और मीनाक्षी मून (2008), *वी आल्सो मेड हिस्ट्री : वुमॅन इन द आम्बेडकर मूवमेंट,* मराठी से अनुवाद वंदना सोनाल्कर, जुबान, नयी दिल्ली.

एम.एन. श्रीनिवास (1952), *रिलीजन ऐंड सोसाइटी अमंग द कूर्ग्स ऑफ़ साउथ इण्डिया,* क्लैरेंडन प्रेस, ऑक्सफ़र्ड.

एस. जे. इरूदायम एलोयसिस आदि (2014), *दलित वुमॅन स्पीक्स आउट : कास्ट, क्लास ऐंड जेण्डर वायलेंस इन इण्डिया,* ज़ुबान, नयी दिल्ली.

एम.सी. प्रधान (1996), *द पॉलिटिकल सिस्टम ऑफ़ द जाट्स इन नार्दर्न इण्डिया,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन.

एम. स्मिता पाटिल (2013), 'रिवाइटलाइज़िंग दलित फ़ेमिनिज़म : टुवर्ड्स रिफ़्लेक्सिव, एंटी-कास्ट एजेंसी ऑफ़ अमांग महार वुमॅन इन महाराष्ट्र', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 47, अंक 18.

क्रिस्तॉफ़ जेफ़्रैलो (2005), *डॉ. आम्बेडकर ऐंड अनटचेबिलिटी: एनालिसिस ऐंड फाइटिंग कास्ट,* सी. हर्स्ट ऐंड कम्पनी पब्लिशर्स, लंदन.

---

[33] नैंसी ए. वाकर (1990) : 5.

[34] वही : 4.

कैरोल एलरिच (1977), 'सोशलिज़म, एनार्किज़म ऐंड फ़ेमिनिज़म', *अमेरिकन फ़ेमिनिस्ट,* खण्ड 5, अंक 1.

गेल ओम्वेट (2006), *दलित विज़ंस,* ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद.

जी.डब्ल्यू. ब्रिग्स (1920), द *चमार्स,* एसोसिएशन प्रेस, कलकत्ता.

डी.आर. नागराज (2010), *द फ़्लेमिंग फीट ऐंड अदर एसेज़ : द दलित मूवमेंट इन इण्डिया,* पर्मानेंट ब्लैक, रानीखेत.

डेविड एन. लारेंजन (1991), *कबीर लीजेंड्स ऐंड अनंतदासज़ कबीर परचई,* स्टेट युनिवर्सिटी ऑफ़ न्युयार्क प्रेस, अल्बानी.

द सेक्सुअल हैरेसमेंट एट द वर्कप्लेस (प्रिवेंशन, प्रोहिबिशन ऐंड रिड्रेसल) एक्ट ऐंड रूल्स (2013), मिनिस्ट्री ऑफ़ लॉ ऐंड जस्टिस, गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया, नयी दिल्ली.

द डाउनसाइड ऑफ़ वुमॅन एंपॉवरमेंट इन इण्डिया : एन एक्सपेरीमेंटल इन्क्वायरी इनटू द रोल ऑफ़ एक्पेक्टेशंस, *सोशल इण्डीकेटर्स रिसर्च,* खण्ड 94, अंक 3.

नैंसी ए. वाकर (1990), *फ़ेमिनिस्ट आल्टर्नेटिव्स, आइरनी ऐंड फैंटेसी इन द कंटेम्परारी नॉवेल बाइ वुमॅन,* युनिवर्सिटी प्रेस ऑफ़ मिसीसिपी, लंदन.

पैट्रिक ओलिवेल (1999), *धर्मसूत्राज़ : द लॉ कोड ऑफ़ आपस्तम्ब, गौतम, बौधायन ऐंड वशिष्ठ,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफ़र्ड.

.... (2017), *अ धर्मा रीडर : क्लासिकल इण्डियन लॉ,* पर्मानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली.

बद्री नारायण (2006), *वुमॅन हीरोज़ ऐंड दलित असर्सन इन नार्थ इण्डिया : कल्चर, आइडेंटिटी ऐंड पॉलिटिक्स,* सेज पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

बामा (2005), *संगति* (इवेंट्स), अनु. एल. होल्म्स्ट्रॉम, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

ब्रायन एटबेरी (2013), *स्ट्रैट्जीज़ ऑफ़ फ़ेंटेसीज़,* इण्डियाना युनिवर्सिटी प्रेस, ब्लूमिंगटन.

बी. रंगराव (2013), *डैस्परेट मेन ऐंड वुमॅन : टेन दलित शार्ट स्टोरीज़ फ़्रॉम इण्डिया,* कृपाज़ पब्लिकेशंस, दिल्ली.

मास्क्स डी. वागले (2010), 'रिफ़्रेमिंग शॉन्स कॉल फ़ॉर अ फ़िनेमिनोलॅजी ऑफ़ प्रैक्टिस : अ पोस्ट इंटरनैशनल एप्रोच', *रिफ़्लैक्टिव प्रैक्टिस* 11, अंक 3.

मेरी फ़ील्ड बेलेंकी (1986), *वुमंज़ वेज ऑफ़ नोइंग : डिवेपमेंट ऑफ़ सेल्फ़, वॉयस ऐंड माइंड,* बेसिक बुक्स, न्युयार्क.

राधा सरकार और अमर सरकार (2016), 'दलित पॉलिटिक्स इन इण्डिया : रिकगनिशन विदाउट रिडिस्ट्रीब्यूशन', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 2, संख्या 20.

रेबेका न्थोगो लेकोको और मैरीतजी वान डर मेर्वे (2006), 'बियांड द रेटरिक ऑफ़ एम्पॉवरमेंट: स्पीक द लैंग्वेज, लिव द एक्सपीरिएंस ऑफ़ द रूरल पुअर', *इंटरनैशनल रिव्यू ऑफ़ द एजुकेशन,* खण्ड 52, अंक 3/4, मई.

रोंकी राम (2016), 'सैक्रालाइजिंग दलित पेरिफ़रीज़ : रविदास डेराज़ ऐंड दलित असर्सन इन पंजाब', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 2, संख्या 1.

विजया रामास्वामी (1996), *डिवीनिटी ऐंड डेवियंस,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली .

वेब पेज

http://www.epw.in/journal/2002/06/special-articles/oppression-and-denial.htmlhttp://www.gov . za/sites/www.gov.za/files/landgender_0.pdfhttp://nhrc.nic.in/Documents/Publications/reportKBSax-ena.pdf .

http://secc.gov.in/stateSummaryReport.

विवेक कुमार (2005), 'सिचुएटिंग दलित्ज़ इन इण्डियन सोसियोलॅजी', *सोसियोलॅजिकल बुलेटिन,* खण्ड 54, संख्या 3, सितम्बर–दिसम्बर.

वेद व्यास (1940), *श्रीमद्भागवत–महापुराण,* अनुवाद : स्वामी सनातन देव, खण्ड 1, गीता प्रेस, नयी दिल्ली.

शर्मिला रेगे (1998), *राइटिंग कास्ट/राइटिंग जेण्डर : रीडिंग दलित वुमंज़ टेस्टमनीज़,* ज़ुबान, नयी दिल्ली.

सरस्वती राजू और संतोष जतराणा (2016) (सं.), *वुमॅन वर्कर्स इन अर्बन इण्डिया,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

सुंदर सुरुक्कै (2007), 'दलित एक्सपीरियंस ऐंड थियरी', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 42, अंक 40.